महाराणा का महत्त्व

76

जयशंकर प्रसाद

H
811.6
P886M

परिचय

जन्म—माघ शुक्ल दशमी सं० १९४६
मृत्यु—कार्तिक शुक्ल एकादशी सं० १९९४

'सुंघनीसाहु' के नाम से प्रसिद्ध, काशी के एक प्रतिष्ठित धनी और उदार घराने में श्री जयशंकर प्रसाद जी का जन्म हुआ था।

प्रसाद जी ने अंग्रेजी की शिक्षा ८वें दर्जे तक स्कूल में पाई थी। परन्तु घर पर उन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की अच्छी शिक्षा मिली। उस समय के काशी के अच्छे कवियों के संत्सग से बाल्यकाल से ही उनकी कविता के प्रति रुचि जागृत हो गई थी।

पन्द्रह वर्ष की उम्र से वे लिखने लगे थे। संवत् १९६३ में 'भारतेन्दु' में प्रथम बार उनकी कविता प्रकाशित हुई। इसके बाद उन्हीं की प्रेरणा से निकले 'इन्दु' मासिक में नियमित रूप से उनकी कविता, कहानी, नाटक और निबन्ध प्रकाशित होने लगे।

प्रसाद जी ने नवीन युग का द्वार हिन्दी में खोला था। वे कविता की नवीन धारा के प्रवर्तक और उसके सर्वमान्य श्रेष्ठ कवि थे। हिन्दी के नाटक-साहित्य में उनकी देन सब से अधिक है और वे हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ नाटककार के रूप में भी विख्यात हैं। कथा-साहित्य भी उनसे कीर्तिमान बना है। १९११ ई० से, जब हिन्दी के अपने मौलिक कहानी-लेखक नहीं थे, तब से उसके भण्डार को उन्होंने भरा है। कथा-साहित्य में प्रसाद-स्कूल, अपनी विशिष्ट शैली के कारण, अपना एक अलग ऊँचा स्थान रखता है। साहित्य के इन विविध अंगों की पूर्ति के साथ-साथ उन्होंने साहित्य तथा खोज-सम्बन्धी निबन्ध भी लिखे हैं, जिनका स्थान हिन्दी-साहित्य में महत्त्वपूर्ण है।

महाराणा का महत्त्व

(ऐतिहासिक काव्य)

जयशंकर 'प्रसाद'

Library IIAS, Shimla
H 811.6 P 886 M
00046418

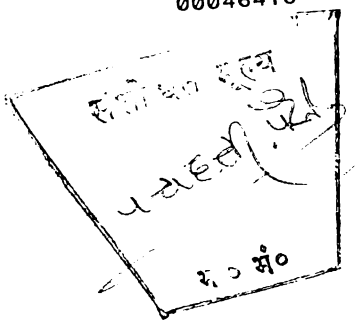

ग्रन्थ-संख्या	१३१
छठवीं आवृत्ति	सं० २०२५ वि०
मूल्य	पचास पैसे
प्रकाशक तथा विक्रेता	भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
मुद्रक	बी० आर० मेहता लीडर प्रेस, इलाहाबाद

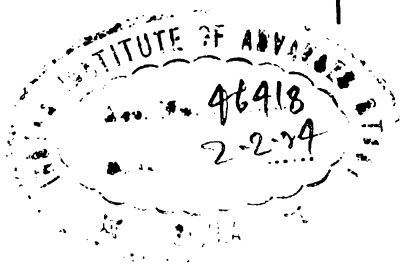

H
811.6
P886M

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY * SIMLA

(प्रथम संस्करण से)

यह 'महाराणा का महत्त्व' इन्दु के कला ५, खंड १, किरण (६ जून १९१४) में प्रकाशित हो चुका है। इसके लेखक को भिन्न तुकान्त कविता लिखने की जब रुचि हुई, तो उसी समय यह प्रश्न उनके मन में उपस्थित हुआ था कि इसके लिए कोई खास छंद होना आवश्यक है। क्योंकि तुकांत-विहीन कविता में वर्ण-विन्यास का प्रवाह और श्रुति के अनुकूल गति का होना आवश्यक है। नहीं तो पद्य और गद्य में भेद ही क्या है? अतः लेखक ने भिन्न तुकांत कविता के लिए कई तरह के छन्दों से काम लिया है। उनमें से २१ मात्रा का छन्द, जो अरिल्ल नाम से प्रसिद्ध था, वही विरति के हेर-फेर से प्रचलित किया हुआ अधिकांश कविताओं में व्यवहृत है। इस छन्द में

भिन्न तुकांत में सब से पहली कविता, लेखक की 'भरत' नाम की है। ह
की बात है कि इसी छन्द को भिन्न तुकान्त के लेखकों ने पसन्द किया है
और इसी में वे अपने विचार प्रकट करने लग गये हैं। क्योंकि भि
तुकान्त होने पर भी छन्द में जो गति होनी चाहिये वह इसमें सर्वथा प्रस्तु
है। मेरी समझ में गीति रूपक (Opera) के लिए भी यही छन्द सबसे
उपयुक्त है।

मार्च १९१३ में लेखक ने 'करुणालय' नाम का एक गीति रूपक
इन्दु में लिखा था। यह देख कर और भी हर्ष होता है कि पं० रूप
नारायण पाण्डेय जैसे साहित्यिक ने हाल ही में 'तारा' नामक गीति रूपक
का इसी छन्द में अनुवाद करके उक्त मत की पुष्टि की है।

—प्रकाशक

महाराणा का महत्त्व

"क्यों जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है ?"
शिविका में से मधुर शब्द यह सुन पड़ा।
दासी ने उन सैनिक लोगों से यही
——यथा प्रतिध्वनि दुहराती है शब्द को——
प्रश्न किया जो साथ-साथ थे चल रहे।
कानन में पतझड़ भी कैसा फैल के
भीषण निज आतंक दिखाता था, कड़े
सूखे पत्तों के ही 'खड़-खड़' शब्द से

अपना कुत्सित क्रोध प्रकट था कर रहा।
प्रबल प्रभंजन वेगपूर्ण था चल रहा
हरे-हरे द्रुमदल को खूब लथेड़ता
घूम रहा था, क्रूर सदृश उस भूमि में।
जैसी हरियाली थी वैसी ही वहाँ—
सूखे काँटे पत्ते बिखरे ढेर-से
बड़े मनुष्यों के पैरों से दीन-सम
जो कुचले जाते थे, हय-पद-वज्र से।
धूल उड़ रही थी, जो घुसकर आँख में
पथ न देखने देती सैनिक वृन्द को,
जिन वृक्षों में डाली ही अवशिष्ट थी
अपहृत था सर्वस्व यहाँ तक, पत्र भी—
एक न थे उनमें, कुसुमों की क्या कथा!
नव वसंत का आगम था बतला रहा
उनका ऐसा रूप, जगत-गति है यही।
पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या भली,
अवनति को जो सहन करे गंभीर हो
धूल सदृश भी नीच चढ़े सिर तो नहीं

जो होता उद्विग्न उसे ही समय में
उस रज-कण को शीतल करने का अहो
मिलता बल है, छाया भी देता वही।
निज पराग को मिश्रित कर उन में कभी
कर देता है उन्हें सुगंधित, मृदुल भी।

देव दिवाकर भी असह्य थे हो रहे
यह छोटा-सा झुंड सहन कर ताप को,
बढ़ता ही जाता है अपने मार्ग में।
शिविका को घेरे थे वे सैनिक सभी
जो गिनती में शत थे, प्रण में वीर थे।
मुगल चमूपति के अनुचर थे साथ में
रक्षा करते थे स्वामी के 'हरम' की।
दासी ने भी वही प्रश्न जब फिर किया—
"क्यों जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है?"
सैनिक ने बढ़ करके तब उत्तर दिया—
"अभी यहाँ से दूर निरापद स्थान है,
यह नवाब साहब की आज्ञा है कड़ी—
मत रुकना तुम क्षण भर भी इस मार्ग में

क्योंकि महाराणा की विचरण-भूमि है
वहाँ मार्ग में कहीं; मिलेगी क्षति तुम्हें
यदि ठहरोगे; रुकता हूँ इससे नहीं।"

दासी ने फिर कहा—"जरा ठहरो यहीं
क्योंकि प्यास ऐसी वेगम को है लगी,
चक्कर-सा मालूम हो रहा है उन्हें।"

सैनिक ने फिर दूर दिखा संकेत से
कहा कि "वह जो झुरमुट-सा है दीखता
वृक्षों का, उस जगह मिलेगा जल, उसी
घाटी तक बस चली-चलो, कुछ दूर है।"

* * *

विस्तृत तरु-शाखाओं के ही बीच में
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था;
कल-कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन-सा देती हुई।
ठहरा, फिर वह दल उसके ही पुलिन में
प्रखर ग्रीष्म का ताप मिटाता था वहीं
छोटा-सा शुचि स्रोत, हटाता क्रोध को

जैसे छोटा मधुर शब्द, हो एक ही।
अभी देर भी हुई नहीं उस भूमि में
उन दर्पोद्धत यवनों के उस वृन्द को,
कानन घोषित हुआ अश्व-पद-शब्द से,
'लू' समान कुछ राजपूत भी आ गये।
लगे झुलसने यवनों को निज तेज से
हुए सभी सन्नद्ध युद्ध आरम्भ था--
पण प्राणों का लगा हुआ-सा दीखता।
युवक एक जो उनका नायक था वहाँ
राजपूत था; उसका वदन बता रहा
जैसी भौं थी चढ़ी ठीक वैसा कड़ा
चढ़ा धनुष था, वे जो आँखें लाल थीं
तलवारों का भावी रंग बता रहीं।
यवन पथिक का झुण्ड बहुत घबरा गया
इन कानन-केसरियों की हुंकार से।
कहा युवक ने आगे बढ़ कर जोर से
"शस्त्र हमें जो दे देगा वह प्राण को
पावेगा प्रतिफल में, होगा मुक्त भी।"

क्योंकि महाराणा की विचरण-भूमि है
वहाँ मार्ग में कहीं; मिलेगी क्षति तुम्हें
यदि ठहरोगे; रुकता हूँ इससे नहीं।"

दासी ने फिर कहा—"जरा ठहरो यहीं
क्योंकि प्यास ऐसी वेगम को है लगी,
चक्कर-सा मालूम हो रहा है उन्हें।"

सैनिक ने फिर दूर दिखा संकेत से
कहा कि "वह जो झुरमुट-सा है दीखता
वृक्षों का, उस जगह मिलेगा जल, उसी
घाटी तक बस चली-चलो, कुछ दूर है।"

* * *

विस्तृत तरु-शाखाओं के ही बीच में
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था;
कल-कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन-सा देती हुई।
ठहरा, फिर वह दल उसके ही पुलिन में
प्रखर ग्रीष्म का ताप मिटाता था वही
छोटा-सा शुचि स्रोत, हटाता क्रोध को

जैसे छोटा मधुर शब्द, हो एक ही ।
अभी देर भी हुई नहीं उस भूमि में
उन दर्पोद्धत यवनों के उस वृन्द को,
कानन घोषित हुआ अश्व-पद-शब्द से,
'लू' समान कुछ राजपूत भी आ गये ।
लगे झुलसने यवनों को निज तेज से
हुए सभी सन्नद्ध युद्ध आरम्भ था--
पण प्राणों का लगा हुआ-सा दीखता ।
युवक एक जो उनका नायक था वहाँ
राजपूत था; उसका वदन बता रहा
जैसी भौं थी चढ़ी ठीक वैसा कड़ा
चढ़ा धनुष था, वे जो आँखें लाल थीं
तलवारों का भावी रंग बता रहीं ।
यवन पथिक का झुण्ड बहुत घबरा गया
इन कानन-केसरियों की हुंकार से ।
कहा युवक ने आगे बढ़ कर जोर से
"शस्त्र हमें जो दे देगा वह प्राण को
पावेगा प्रतिफल में, होगा मुक्त भी ।"

यवन-चमूनायक भी कुछ कादर न था,
कहा—"मरूँगा करते ही कर्तव्य को—
वीर शस्त्र को देकर भीख न माँगते।"
मचा द्वन्द्व तब घोर उसी रणभूमि में
दोनों ही के अश्व हुए रथचक्र-से
रणशिक्षा, कैसा, कर-लाघव था भरा
यवन वीर ने भाला निज कर में लिया
और चलाया वेग सहित, पर क्या हुआ
राजपूत तो उसके सिर पर है खड़ा
निज हय पर, कर में भी असि उन्मुक्त है।
यवन-वीर भी घूम पड़ा असि खींच के
गुथीं विजलियाँ दो मानो रण-व्योम में
वर्षा होने लगी रक्त के विन्दु की;
युगल द्वितीया चन्द्र उदित अथवा हुए
धूलि-पटल को जलद-जाल-सा काट के।
किन्तु यवन का तीक्ष्ण वार अति प्रबल था,
जिसे रोकना 'राजपूत' का काम था,
रुधिर-फुहारा-पूर्ण-यवन-कर कट गया

असि जिसमें थी, वेग-सहित वह गिर पड़ा
पुच्छल तारा सदृश, केतु-आकार का।
अभी देर भी हुई नहीं शिर रुण्ड से
अलग जा पड़ा यवन-वीर का भूमि में।
वचे हुए सब यवन वहीं अनुगत हुए
घेर लिया शिविका को क्षत्रिय सैन्य ने।
"जय कुमार श्री अमरसिंह !"—के नाद से
कानन घोषित हुआ, पवन भी त्रस्त हो
करने लगा प्रतिध्वनि उस जय शब्द की।
राजपूत वन्दी गण को लेकर चले।

* * *

दिन भर के विश्रांत विहग-कुल नीड़ से
निकल-निकल कर लगे डाल पर बैठने।
पश्चिम निधि में दिनकर होते अस्त थे
विपुल शैल-माला अर्बुदगिरि की घनी—
शान्त हो रही थी, जीवन के शेष में
कर्मयोगरत मानव को जैसी सदा
मिलती है शुभ शांति। भली कैसी छटा

प्रकृति-करों से निर्मित कानन देश की
स्निग्ध उपल शुचि स्रोत सलिल से धो गये,
जैसे चन्द्रप्रभा में नीलाकाश भी
उज्ज्वल हो जाता है छुटी मलीनता।
महाप्राण जीवों के कीर्ति सुकेतु से
ऊँचे तरुवर खड़े शैल पर झूमते।
आर्य्य जाति के इतिहासों के लेख-सी
जल-स्रोत-सी वनी चित्र रेखावली
शैल-शिखाओं पर सुन्दर है दीखती।

करि-कर-सम कर-बीच लिये करवाल है
कौन पुरुष वह बैठा तट पर स्रोत के
दोनों आँखें उठ-उठ कर बतला रहीं
"जीवन-मरण"—समस्या उनमें है भरी।
यद्यपि है वह वीर श्रांत तब भी अभी
हृदय थका है नहीं, विपुल बल पूर्ण है;
क्योंकि कर्मफल-लाभ एक बल है स्वयं।
करुणामिश्रित वीरभाव उस वदन पर
अनुपम महिमा-मण्डित शोभित हो रहा

जन्म-भूमि की ओर महा करुणा भरी
यवन शत्रु प्रति कालानल के कोप-सी
दोनों आँखें, तिस पर भी गम्भीरता
हर्ष भरा है अपने ही कर्तव्य का
आजीवन जिसको वह करता आ रहा।
कहो कौन है ?—आर्य्यजाति के तेज-सा ?
देशभक्त, जननी का सच्चा पुत्र है,
भारतवासी ! नाम बताना पड़ेगा
मसि मुख में ले अहो लेखनी क्या लिखे !
उस पवित्र प्रातःस्मरणीय सुनाम को।
नहीं, नहीं, होगी पवित्र यह लेखनी
लिखकर स्वर्णाक्षर में नाम 'प्रताप' का।
तुम अपने 'प्रताप' को विस्मृत हो गये
अरे ! कृतघ्न बनो मत उसको भूल के
यह महत्त्वमय नाम स्मरण करते रहो।

बैठे-बैठे वन-शोभा थे देखते—
अपनी लीलाभूमि, सुगौरव कुञ्ज की।
सालुम्बापति आये, अभिवादन किया।

आर्य्यनाथ ने कहा—"कहो सरदारजी, समाचार है कैसा अब मेवाड़ का ?"

कृष्णसिंह ने कहा—"देव ! इस प्रांत में एक वार फिर आर्य्य-राज्य अब हो गया, वीर राजपूतों की तलवारें खुलीं, चमक रहीं मेवाड़-गगन में ज्वलित हो, भाग रहे हैं भीत यवन मेवाड़ से। राजन् ! समाचार है सुखमय देश का अभी यवन का एक वृन्द वंदी हुआ राजकुँवर ने भेजा है उनको यहाँ दुर्ग-द्वार पर वे वंदी हैं और भी, सुनिए, उसमें है नवाव-पत्नी यहाँ।"

आर्य्यनाथ ने कहा—"किया किसने उसे बंदी ? स्त्री को क्षत्रिय देते दुख नहीं।"

कृष्णसिंह ने कहा—"प्रभो उस युद्ध में जितने वंदी हुए सभी भेजे गये। अब जो आज्ञा मिले बस वही ठीक है वही किया जावेगा; पर यह बात भी

ध्यान कीजिए, वह वनिता है शत्रु की।
दिल्लीपति का सैनप हो, आया यहाँ
जो रहीमखाँ अकबर का चिर-मित्र है
उसकी ही परिणीता है यह सुन्दरी
इसका बन्दी रहना नैतिक दृष्टि से
ठीक नहीं क्या ? जब तक ये सब शांत हों।"

कहा तमक कर तब प्रताप ने—"क्या कहा
अनुचित बल से लेना काम सुकर्म है !
इस अबला के बल से होगे सबल क्या ?
रण में टूटे ढाल तुम्हारी जो कभी
तो बचने के लिए शत्रु के सामने
पीठ करोगे ? नहीं, कभी ऐसा नहीं,
दृढ़-प्रतिज्ञ यह हृदय, तुम्हारी ढाल बन
तुम्हें बचावेगा। इस पर भी ध्यान दो
घोर अँधेरे में उठती जब लहर हो
तुमुल घात-प्रतिघात पवन का हो रहा
भीमकाय जलराशि क्षुब्ध हो सामने
कर्णधार-रक्षित दृढ़-हृदय सु-नाव को

छोड़, कूदना तिनके का अवलम्ब ले
घोर सिन्धु में, क्या बुधजन का काम है ?
परम सत्य को छोड़ न हटते वीर हैं।
सालुम्ब्राधिपते ! क्या अब होगा यही
क्षुद्रकर्म इस धर्मभूमि मेवाड़ में ?
और 'अमर' ने ही नायक होकर स्वयं
किया अधम इस लज्जाकर दुष्कर्म को !
बस बस, ऐसे समाचार न सुनाइए
शीघ्र उसे उसके स्वामी के पास अब
भेज दीजिए, बिना एक भी दुख दिये।
सैनिक लोगों से मेरा संदेश यह
कहिए, कभी न कोई क्षत्रिय आज से
अबला को दुख दें, चाहे हों शत्रु की
शत्रु हमारे यवन--उन्हीं से युद्ध है
यवनीगण से नहीं हमारा द्वेष है।
सिंह क्षुधित हो तब भी तो करता नहीं
मृगया, डर से दबी शृगाली-वृन्द की।"

* * *

"सुन्दर मुख की होती है सर्वत्र ही
विजय, उसे कर सकता कोई भी नहीं।
रमणी के सुकुमार अंग पर केशरी
सम्हल-सम्हल कर करता प्रेम-प्रकाश है,
प्रिये ! तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य्य से
वशीभूत होकर वह कानन-केशरी,
दाँत लगा न सका; देखा—गान्धार का
सुन्दर दाख"—कहा नवाब ने प्रेम से।
काँपी सुराही कर की, छलकी वारुणी
देख ललाई स्वच्छ मधूक कपोल में;
खिसक गई डर से जरतारी ओढ़नी,
चकाचौंध-सी लगी विमल आलोक को,
पुच्छमर्दिता वेणी भी थर्रा उठी।
आभूषण भी झन-झन कर बस रह गये।
सुमन-कुंज में पंचम स्वर से तीव्र हो
बोल उठी वीणा—"चुप भी रहिए जरा
जिसकी नारी छोड़ी जाकर शत्रु से,
स्वीकृत हो सादर अपने पति से, भला

वह भी बोले, तो चुप होगा कौन फिर !"
अपने हँसते मुख को शीघ्र बढ़ा दिया ।
तब नवाब ने पानपात्र निश्शेष कर
कहा कि—"सज्जन से हो यदि अपमान भी
अच्छा है दुर्जन-कृत बहुसम्मान से ।
सज्जन-कृत अपमान न होता है कभी
हृदय दिखाने को, होता वह भूल से;
किन्तु नीच नर जो करता सम्मान है
उसमें भी उसका घमण्ड है छिप रहा
केवल आडम्बर में निज अभ्यर्थना
करता है वह अपनी कुत्सित नीति से ।"
"बस बस, बातें अब विशेष न बनाइए"
कहा सुन्दरी ने—"यह सब भी ढंग है
प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति में हास भी
पाद-पूर्त्ति-सा होता है दुष्काव्य में ;
यह थोथा पाण्डित्य न आज बघारिए
होता जो निरुपाय वही क्या सरल है ?"
"प्रिये ! मर्म की बातें मत ऐसी कहो

इससे होता दुःख—"कहा नव्वाव ने—
"मैं जब से सेनापति हो आया यहाँ
सचमुच, वीर प्रताप सदा विजयी रहा
मैं होकर निश्चेष्ट देखता था वही—
रण-क्रीड़ा स्वाधीना जननी-भूमि के
वीर पुत्र की, निर्निमेष होकर अहो !
तुर्क देश से लेकर हाँ गान्धार तक
वीर भूमि के शतशः कानन देख कर
वीर कथाओं को सुन कर भी आज तक
प्राप्त न हुई कभी थी मुझे प्रसन्नता;
क्योंकि सभी वे क्रूर और निर्दय मिले
युद्ध-कार्य करते थे अपने स्वार्थ से ।
जन्मभूमि के लिए, प्रजा-सुख के लिए
इतना आत्मोत्सर्ग भला किसने किया ?
दुग्ध-फेन-निभ शय्या को यों छोड़ कर
सूखे पत्ते कौन चबाता है कहो—
मातृ-भूमि की भक्ति, देशहित-कामना,
किसको उत्तेजित करती है, वे कहाँ ?

जिस कानन में पहुँचा युद्ध-विनोद में
सदा मिला सन्नद्ध, लिये तलवार ही,
गिरि-कन्दर से देख स्वकीय शिकार को
जैसे झपटे सिंह, वही विक्रम लिये
वीर 'प्रताप' दहकता था दावाग्नि-सा
सत्य प्रिये ! मैं देख शूर-छवि वीर की
होता था निश्चेष्ट, वाह कैसी प्रभा !
कितने युद्धों में मेरी निश्चेष्टता
हुई विजय का कारण वीर 'प्रताप' के,
क्योंकि मुग्ध होकर मैं उनको देखता ।"

"कोरी भक्ति भला होती किस-काम की
कुछ उसका उपयोग अवश्य दिखाइए—"
कहा सुन्दरी ने तन कर कुछ गर्व से—
"सच्चे तुर्क न होते कभी कृतघ्न हैं ।"
"प्रिये ! भला किस मुख से मैं तलवार अब
लेकर कर में समर करूँ उस वीर से,
मिलती मुझे पराजय भी यदि युद्ध में
तो भी इतना क्षोभ न होता हृदय में ।"

कहा, देख कर नत दृग से नव्वाब ने—

"जिसकी महिमा गाते हैं समकण्ठ से
भारत के नर-नारी, उस सम्राट का
बढ़ा महत्त्व, हुई प्रताप से शत्रुता
सचमुच ऐसा वीर उदार कहाँ मिले।
मैं तो अब, फिर जाऊँगा दिल्ली अभी,
चाहे मुझको लोग भले कायर कहें
उस अपयश को सह लूँगा मैं भले ही
किन्तु न सैनप-पद अब मेरे योग्य है।

कहा पास में और खिसक कर प्रेम से
कमल-लोचना बेगम ने नव्वाब से—

"प्रियतम! सचमुच यह पार्वत्य प्रदेश भी
अब न मुझे अच्छा लगता है, शीघ्र ही
मैं चलना चाहती सुखद काश्मीर को।
कुछ दिन की छुट्टी लेकर सम्राट से,
चलिए जल-परिवर्तन करने शीघ्र ही
और हो सके तो मिलकर सम्राट से,
राणा से शुभ संधि करा ही दीजिये।"

"मुग्धे ! इतने पर भी तुम परिचित नहीं
कुलमानी, दृढ़, वीर महान् 'प्रताप' से !
मला करेगा संधि कभी वह यवन से ?
कई हो चुके हैं प्रस्ताव मिलाप के
पर प्रताप निज दृढ़ता ही पर अटल है—"
कहा खानखाना ने कुछ गम्भीर हो—
"वामलोचने ! कर्मयोग-रत वीर को
मिलती सिद्धि सदा अपने सतकर्म से
उसके कुछ संयोग स्वयं बन जायँगे
ऐसे, जिससे उसको मिले अभीष्ट फल ।
सच्चा साधक है सपूत निज देश का
मुक्त पवन में पला हुआ वह वीर है
सत 'प्रताप' को स्वयं मिलेगी सम्पदा
परमपिता की जो होगी शुभ कामना
तो वह मुझे बनावेगा अपना कभी
परिचारक साधन में इस सत्कार्य्य के ।"

* * *

तारा-हीरक-हार पहन कर, चंद्रमुख—

दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार से)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से
अकबर के साम्राज्य भवन के द्वार से
निकल रही थी लपट सुगन्ध सनी हुई
बसरा के 'गुलाब' से वासित हो रहा,
भारत का सुख शीत पवन, जैसे कहीं
मिले विलास नवीन विवेकी हृदय से
राज-भवन में मणिमय दीपाधार सब
स्वयं प्रकाशित होते थे, आलोक भी
फैल रहा था, स्वच्छ सुविस्तृत भवन में
कृत्रिम मणिमय लता, भित्ति पर जो बनी
नव वसन्त-सा उन्हें विमल आलोक ही
मुक्ताफलशालिनी बनाता था वहाँ,
कुसुम-कली की मालाएँ थीं झूमतीं
तोरण-बंदनवार हरे द्रुमपत्र के।
सुरभि पवन से सब कलियाँ खिलने लगीं,

कृश मालाएं गजरे-सी अब हो गईं।
सज्ज सभागृह में सब अपने स्थान पर
बन्दी, चारण, प्रतिहारीगण थे खड़े,
ढले हुए सुन्दर साँचे में शिल्प के
पुतले-जैसे सजे गये हों भवन में।
पुष्पाधार, सजाये कुसुमित क्यारियाँ,
मौन खड़े थे सुन्दर मालाकार-से;
कृत्रिम भँवर न गूँज रहा था त्रास से।
सुन्दर मणिमय मंच मनोरम था लगा,
बैठे थे उपधान सहारे हिन्द के—
अकबर शाहंशाह चिबुक कर पर धरे।
अभिवादन कर, खड़े रहे निर्दिष्ट निज—
स्थानों पर सब चतुर शिरोमणि मंत्रिगण
उस प्रभावशाली सतेज दरबार में
क्षत्रिय नरपतिगण भी सविनय थे झुके।
तब रहीमखाँ के प्रति रुख करके, चतुर—
अकबर ने कुछ हँस कर पूछा व्यंग से—
"कहिए यहाँ आगरे की जलवायु से

स्वास्थ्य हुआ अब ठीक आपका वा नहीं ?"

कहा खानखाना ने सिर नीचे किये--
"शाहंशाह अब भी कुछ वैसा है नहीं
जैसा अच्छा होना हूँ मैं चाहता,
इसीलिए अब मेरी है यह प्रार्थना
मुझे हुक्म हो तो जाऊँ काश्मीर ही,
क्योंकि वही जलवायु मुझे है स्वास्थ्यकर;
यही बताया है हकीम ने भी मुझे।"

अकबर ने फिर कहा--"भला यह तो कहो,
क्योंकर ऐसा स्वास्थ्य तुम्हारा हो गया ?"

कहा खानखाना ने फिर कुछ नम्र हो--
'बस हुजूर, मुझसे न ; वही कहलाइए
जिसे आपसे कहा नहीं मैं चाहता।
क्षमा कीजिये। यदि आज्ञा होगी कि हाँ,
कहो ! मुझे फिर सच कहना ही पड़ेगा।"

अकबर ने तब कहा--"सत्य निर्भय कहो।"

कहा खानखाना ने झुक कर--"जिस दिवस
मुझे बनाकर सैनप भेजा आपने

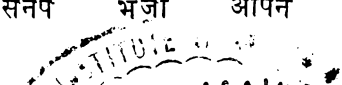

वीरभूमि मेवाड़-विजय के हेतु, हाँ—
उस दिन सचमुच मुझे असीम प्रसन्नता
हुई कि, मैं भी देखूँगा उस वीर को,
जो अब तक होकर अवाध्य सम्राट का
करता है सामना बड़े उत्साह से !
सचमुच शाहंशाह एक ही शत्रु वह
मिला आपको है कुछ ऊँचे भाग्य से;
पर्वत की कन्दरा महल है, बाग हैं—
जंगल ही आहार—घास, फल-फूल है
सच्चा हृदय सहायक, उसके साथ है।
मुगल-वाहिनी से होता जब सामना
भिड़ जाना सन्मुख उसका कर्त्तव्य था
सुकुमारी कन्या त्यों बालक का कभी
छिन जाता आहार बना जो घास से।
वे भी जब हैं अश्रु बहाते तो नहीं
होता है पाषाण-हृदय द्रवमय कभी।
तिस पर भी उसके इस हृदय-महत्त्व का
कैसे मैं वर्णन कर सकता हूँ प्रभो !

राजकुँवर ने बेगम को बन्दी किया
फिर भी सादर उसे भेज कर पास में।
मेरे, मुझको कैसा है लज्जित किया
मनोवेदना से मैं व्याकुल हो उठा;
इसीलिये यह रोग हुआ है असल में।
इससे छुटकारे का एक उपाय है—
आज्ञा हो तो मैं भी कुछ विनती करूँ।"
हँसे और बोले अकबर—"हाँ हाँ कहो,
सब मुझको है विदित, हुआ जो-जो वहाँ।"

कहा खानखाना ने—"राणा ने कभी—
किया नहीं आक्रमण आप के राज्य पर।
अपने छोटे राज्य मात्र से तुष्ट है,
और किसी से भड़क रही हो शत्रुता
तो वह अपने भुजबल से जो कर सके
करे, शिथिल होगा। तो भी बल आपका
बढ़ा रहेगा। ऐसे सज्जन व्यक्ति से
आप क्यों न अपना महत्त्व दिखलाइए।
सच कहिए, क्या ऐसे उन्नत-हृदय को

दुख देना है अच्छा ईश्वर-नीति में ?
केवल चुप हो जाना ही है आपका—
सन्धि शांति के मंगलघोष-समान हीं,
दो महत्त्वमय हृदय एक जब हो गये
फैलेगा फिर वह महान सौरभ यहाँ
जिसके सुखमय गंध-प्रेम में मत्त हो,
भारत के नर गावेंगे यश आपका।"
अकबर ने फिर कहा—"बात यह ठीक है,
अब न लड़ाई राणा से उपयुक्त है।
भेजो आज्ञापत्र शीघ्र उस सैन्य को,
सब जल्दी ही चले आयँ अजमेर में।"

कहा खानखाना ने—"हे उन्नत हृदय—
भारत के सम्राट ! दयामय आपकी
सुयश-लता का बीज उर्वरा-भूमि में
शांति-वारि से सिञ्चित हो, फलवती हो।
अब न काम है जाने का काश्मीर को
इन चरणों की सेवा ही भू-स्वर्ग है !"

46418
2-2-74
SIMLA

सम्पूर्ण प्रसाद-साहित्य

कविता

कामायनी	५ रु.
आँसू	१.२५
लहर	१.५०
झरना	१.५०
महाराणा का महत्त्व	५० पै.
प्रेम-पथिक	७५ पै.
करुणालय	१ रु.
कानन-कुसुम	२ रु.
प्रसाद संगीत	२ रु.

नाटक

स्कन्दगुप्त	२.५०
अजातशत्रु	२ रु.
चन्द्रगुप्त	३ रु.
ध्रुवस्वामिनी	७५ पै.
विशाख	१.५०
कामना	१.७५
जनमेजय का नागयज्ञ	१.५०
राज्यश्री	१.५०
एक घूंट	१ रु.

उपन्यास

कंकाल	५ रु.
तितली	५ रु.
इरावती	२ रु.

कहानी-संग्रह

आकाशदीप	३ रु.
इन्द्रजाल	२.५०
प्रतिध्वनि	१.५०
आँधी	२.५०
छाया	२ रु.

विविध विषय

काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	२ रु.
चित्राधार	३ रु.

प्रसाद-साहित्य के सहायक-ग्रन्थ

जयशंकर प्रसाद	:	श्री नन्ददुलारे वाजपेयी	४ रु.
प्रसाद का काव्य	:	डा० प्रेमशंकर	१२ रु.
प्रसाद साहित्य-कोश	:	डा० हरदेव बाहरी	९ रु.
कामायनी सौन्दर्य	:	डा० फतहसिंह	६.५०

भारती-भंडार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

Library IIAS, Shimla
H 811.6 P 886 M
00046418